...ना आज़ाद
३४
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

मौलाना आजाद

"मौलाना आजाद प्राकृतिक सत्याग्रही हैं जिन्हें सदियोंसे अन्यायके विरुद्ध झण्डा बुलन्द करनेवाली खानदानी ख्याति प्राप्त है।"

लेखक
'रामकृष्ण'

प्रकाशक
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस।

[द्वितीय बार] १९५२ [मूल्य

प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस।

शाखाएँ—
२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता।
बाँकीपुर, पटना।

मुद्रक—
कृष्णगोपाल केडिया
वणिक प्रेस
साक्षीविनायक, बनारस।

मौलाना आजाद

१
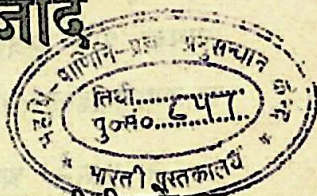
हिन्दुस्तान बड़ी तेजीके साथ आजादीकी ओर बढ़ रहा है परन्तु मार्केकी बात तो यह है कि इस समय हमारी आजादीके 'रह-नुमा' स्वयं आजाद हैं। आजाद, राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आजाद। आजादी और आजाद—इन दोनोंके पवित्र और गौरवपूर्ण सम्बन्धपर प्रत्येक हिन्दुस्तानीको गर्व है।

लम्बी, चौड़ी, सरोंके समान सीधी, बुढ़ापेके गौरव तथा संघर्षपूर्ण अनुभवोंकी मर्यादासे लदी हुई, वह शाही सूरत 'जहाजी रोशनी' (लाइट हाउस') के समान आज लगभग आधी सदीसे हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है। हिन्दुस्तानी जूता, चूड़ीदार पाजामा, लम्बी बंद गलेकी अचकन, ऐनक और ऊंची बालदार टोपीके नीचे बुद्धिकी जगमग ज्योतिसे जगमगाती हुई दिलोंमें सीधी घुस जानेवाली तेज आंखें—निःशब्द बोल उठती हैं कि "मैं

राष्ट्रपति हूं !" भारत, ४० करोड़ बाशिन्दों वाले भारत-का राष्ट्रपति, मौलाना अबुल कलाम आजाद। 'दीन' के 'पासबां' और 'मजहब' के 'पाबंद', उस सच्चे मुसलमान-पर हमारी हिन्दुस्तानियतको नाज है।

जो सामने आया आदरसे झुक गया। किसीने समझा, किसीने नहीं समझा, लेकिन विश्वास और आदर सबने किया, भरोसा सबको मिला। चेहरेपर बुजुर्गी और बड़प्पनकी झुर्रियोंके बीच पिछले ६० वर्षों के राष्ट्रीय युद्ध की गुनगुनाती हुई तस्वीर एक विचित्र तेजसे व्याप्त रहती है।

यहां हम उसी भव्य पुरुषकी चर्चा करना चाहते हैं।

मुसलमान और मक्का! दोनोंका धार्मिक सम्बन्ध कितना गहरा और पुनीत है, इसका अनुमान मुसलमान ही नहीं, हिन्दू भी कर सकते हैं। परन्तु हिन्दू ही नहीं, मुसलमानोंमेंसे भी बहुत कमको मालूम होगा कि मौलाना आजाद एक मात्र मुसलमान नेता हैं जो हिन्दुस्तान

और मक्काके सच्चे सम्बन्धके दावेदार माने जा सकते हैं। और यह तो और भी कम लोगोंको मालूम होगा कि इस पवित्र सम्बन्धके पीछे अंग्रेजी हुकूमतकी वह काली साया है जो १८५७ ई० के बाद दिल्लीके तख्तपर एक ऐतिहासिक बर्बरताके साथ काबिज हुई थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी अंग्रेजी हुकूमतसे बेजार होकर १८५७ ई० में हिन्दू और मुसलमान, दोनोंने विद्रोह कर दिया। परन्तु देशका दुर्भाग्य! विद्रोही परास्त हुए और अंग्रेजी फौजें दिल्लीमें दाखिल हुईं। जेनरल मान्ट-गोमरी स्वयं लिखते हैं—"शहरके अन्दर ज़ो भी नजर आया उसे हमने संगीनोंकी नोकसे खतम किया। इन अभागोंकी संख्या कितनी अधिक थी आप इसीसे समझ सकते हैं कि एक-एक घरमें चालीस-चालीस, पचास-पचास प्राणी छिपे हुए थे। यह विद्रोही नहीं बल्कि निर्दोष नागरिक थे जिन्होंने यह आशा कर रखी थी कि नम्रता और क्षमाका राज कायम होगा। परन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि उनकी आशायें दुराशामात्र थी। हाथ जोड़कर दयाकी भिक्षा मांगते हुए निर्दोष लोगोंको गोलीसे उड़ा दिया गया। बूढ़े और कांपते हुए लोगोंको तलवारके घाट उतार दिया

गया।......लाखों—करोड़ों लोग निरपराध बे-घर होकर इधर-उधर भिखारियोंके समान भटकने लगे।...”

अंग्रेजी हुकूमतकी उन हैवानी करतूतोंसे प्राण बचानेके लिए बहुतोंने देश छोड़ दिया और मौलाना साहेबके पूज्य पिता भी उन मुसीबत जदा प्राणियोंमेंसे एक थे। रामपुरके नव्वाब युसुफअली खां ने जो उनके शिष्य और अंग्रेजोंके सहायक थे, उन्हें रामपुरसे बम्बई और बम्बईसे मक्का भेजवा दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजोंने हमारे चरित्र नायकके जन्मके लिए मक्कामें जन्म-भूमि तैयार कर दी।

३

शेख जमालउद्दीन देहलवी, जो मुस्लिम पुस्तकोंमें रहीमतुल्ला आलेके नामसे प्रसिद्ध हैं, एक बहुत बड़े फकीर हो गये हैं। उनकी लिखी हुई अनेकों पुस्तकें आज भी बड़े आदरसे देखी जाती हैं। शेख साहबके हजारों शिष्य थे और उनमेंसे एक थे सम्राट अकबरके भ्राता खाने आजम।

अकबरका शासन अपने पूर्ण वैभव कालमें था।
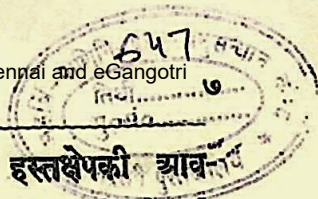
अकबरने मजहबी मामलोंमें भी शाही हस्तक्षेपकी आवश्यकता देखी। मौलवी और आलिमोंकी मजलिसने उसे "मुजतहिद" अर्थात् इसलामका "धर्माधिकारी" घोषित कर दिया। परन्तु शेख जमालउद्दीन देहलवीने उस घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करनेसे इन्कार कर दिया। क्यों ? क्योंकि वह कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे कि राजाको धर्ममें हस्तक्षेप करनेका अधिकार है। नतीजा यह हुआ कि उन्हें हिन्दुस्तान छोड़कर मक्का चला जाना पड़ा। उसी प्रकार शेख जमाल उद्दीनके वंशज शेख मुहम्मदको घुटनोंके बल सम्राट जहांगीरका अभिवादन न करनेके अपराधमें ग्वालियर किलाके नारकीय कारागारमें बंद होना पड़ा। हमारे राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आजाद उन्हीं ऐतिहासिक सत्याग्रहियोंकी नवीं या दसवीं पीढ़ीमें आते हैं।

इस प्रकार हम सहज ही समझ सकते हैं कि मौलाना आजाद प्राकृतिक सत्याग्रही हैं जिन्हें सदियोंसे अन्यायके विरुद्ध निर्भीक होकर झण्डा बुलंद करनेवाली खानदानी ख्याति प्राप्त है।

मौलाना आजादके पिता मुहम्मद खैरुद्दीन साहेब अपने पुरखाओंके समान ही इस्लामके धर्म-गुरु होनेके

साथ-साथ धुरन्धर विद्वान थे। उन्होंने अरबी और फारसी में, अनेकों पुस्तकें लिखी हैं। उनके हजारों शिष्य दिल्ली, गुजरात, काठियावाड़, बम्बई और कलकत्तामें फैले हुए हैं।

१८५७ ई० में जब वह भारत छोड़कर मक्का पहुँचे तो तुर्कीके सुलतान अब्दुल मजीदने जो खैरुद्दीन साहेबकी ख्याति और विद्वतासे पहले हीसे परिचित थे उन्हें कुस्तुन्तुनिया बुला भेजा। सुलतान अब्दुल मजीदकी कृपासे खैरुद्दीन साहेबकी अनेकों पुस्तकें काहरामें प्रकाशित हुईं।

कुस्तुन्तुनियासे मक्का लौटनेपर उन्होंने अपने भारतीय तथा अन्य शिष्योंसे ११ लाख रुपया एकत्रित करके मक्काकी प्रसिद्ध नहर आईन-ए जुबेदाका निर्माण किया। यहीं उन्होंने मक्काके सबसे विद्वान और श्रेष्ठतम धर्मगुरु, शेख मुहम्मद जहीर वेत्रीकी सुकन्यासे विवाह किया और यहीं १८८८ ई० में मौलाना आजादका जन्म हुआ।

मौलाना साहेबके माता और पिता, दोनों 'शेख' थे। 'शेख' मुसलमानोंकी एक पवित्र और आदरणीय शाखा है। साथ ही साथ विद्वान और धार्मिक घराना होनेके कारण मौलाना आजाद माता-पिता, दोनों पक्षसे विद्या और धर्म, दोनोंके संपूर्ण अधिकारी हैं।

४

भारतीय शिष्योंके निरंतर आग्रहसे विवश होकर शेख खैरुद्दीन साहेब पुनः मक्कासे भारत वापस आये और १८९८ ई० में कलकत्तामें बस गये।

मौलाना आजाद उस समय केवल १० वर्षके थे। मांके कारण उनकी मातृभाषा अरबी थी परन्तु पिताके कारण उन्हें उर्दू का भी शुद्धतम ज्ञान हो गया था। इस प्रकार बचपनमें ही वह अरबी और उर्दू, दोनोंके अच्छे ज्ञाता हो गये थे।

पिताको अंग्रेजी तालीम और विलायती व्यवहारसे सख्त नफरत थी। नफरत हो क्यों नहीं? मक्कारी और फरेबसेही जिसने सारे देशको तबाह कर दिया, जुल्म और व्यभिचार, अधर्म और गुलामी ही जिसकी देन रही, उसी अंग्रेजी हुकूमत की शिक्षा-दीक्षामें डालकर अपने बेटेको गुलामीका तौक पहनाना शेख खैरुद्दीन साहेब जैसे विद्वान और धर्मानुरागी पिताको कभी स्वीकार नहीं था। दिल्ली-में उन्होंने अंग्रेजी पाशविकताकी नंगी तस्वीर देखी थी। इसलिए अंग्रेजोंकी किसी भी बातसे पास रखना उन्हें

हर्गिज गवारा नहीं था। नतीजा यह हुआ कि मौलाना आजादकी शिक्षा अंग्रेजी स्कूलोंके बजाय घर पर ही शुरू हुई।

अरबी और फारसीका उच्चतम पाठ्य क्रम है 'दर्स-ए-निजामी'। एक अच्छे विद्यार्थीको इसे समाप्त करनेके लिए कमसे कम १० वर्ष लगते हैं। परन्तु मौलान आजाद-ने इस संपूर्ण क्रमको केवल ४ वर्षमें समाप्त कर दिया। दर्स-ए-निजामीकी अन्तिम श्रेणीमें अध्यापनका व्यावहारिक अभ्यास करना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल १४ वर्षकी बाल्यावस्थामें ही मौलाना साहबने सफल विद्यार्थी ही नहीं, एक सफल शिक्षकका भी पद प्राप्त कर लिया था।

दर्स-ए-निजामीमें भाषा, दर्शन, तर्क, गणित, रेखा गणित, भूगोल और इतिहास, सबका सम्पूर्ण ज्ञान कराया जाता है। मतलब यह कि केवल १४ वर्षकी अवस्थामें मौलानासाहेब एक काबिल विद्वान हो गये थे।

अंग्रेजी स्कूल और शिक्षण प्रणालीसे दूर रहनेके कारण मौलाना साहेब उनकी बुराइयों और गुलाम प्रकृतिसे भी अछूते रहे। उनका विद्याभ्यास घरेलू वातावरणमें हुआ अतएव उनके विकास और चरित्र निर्माणपर पिताका ही

विशेष प्रभाव पड़ा है। मौलानासाहेबके पिता कट्टर एकांत-प्रिय व्यक्ति थे। उनके हजारों शिष्य थे जिनका रोज तांता लगा रहता परन्तु वह स्वयं 'मौलूद शरीफ' (मुहम्मद साहेबका जन्म दिवस) या ईदके दिनको छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। घरके साज-व-सामानोंमें भी बे-हद सादगी थी। मेज-कुर्सी, सोफा, गद्दा या मसनद, कुछ भी नहीं, एक चटाई ही उस बड़ी बैठककी शोभा थी जिसपर बड़े-से बड़े और छोटेसे छोटे, सबका स्वागत होता। इसी चटाईपर बड़े बड़े नव्वाब और टीपू सुल्तानके लड़के सभी बैठते थे। पोशाक भी उनकी वैसा ही सादी थी, बटनदार कोट तो उन्होंने पहना ही नहीं। यह उस विद्वान और धर्मानुरागी व्यक्तिका खाका है, जिसकी विद्वता और महत्ता, जिसके त्याग और धर्माधिकारके सामने तुर्क साम्राज्यके सम्राट्, टीपूके लड़के, भारतीय नव्वाब और अमीरोंने सिर नत किया था, जिसकी रचनायें अब भी ज्ञानका साधन समझी जाती हैं, जिसके अब भी हजारों शिष्य देश-विदेशमें फैले हुए हैं। और यह उसी भव्य पिताकी देन है जिसने मौलाना आजादके स्वभाव और चरित्र-निर्माणमें गारे और चूनेका काम किया है।

मौलानासाहेब जनताके ही जीव हैं, परन्तु पिताके समान ही, रहते हैं बिल्कुल अलग, दिलके किसी एक कोनेमें। पितावाली सादगी और एकान्त प्रियताका स्वभाव मौलाना साहेबके खूनमें शामिल हो गया है। मौलाना साहेबने पिताकी एकान्त प्रिय तबीयत अवश्य पाई है, परन्तु ज्ञानकी अतृप्त प्यासने उन्हें पिताके समान ही धर्म गुरू नहीं बना रहने दिया। उन्होंने दुनिया और दुनिया की समस्यायोंसे नाता जोड़ा और आज जनतासे एक प्रकारसे अलग रहते हुए भी जनताके जीवनमें समा गये हैं।

१९३७ ई० में कांग्रेसने एक केन्द्रीय बोर्डकी अध्यक्षतामें देशके विभिन्न प्रांतोंका शासन सूत्र अपने हाथमें लिया। इस बोर्डके तीन सदस्य थे—सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू और मौलाना आजाद। अमेरिकाके प्रसिद्ध पत्रकार, जान गुन्थरने तीनोंको तीन रूपमें प्रस्तुत किया है। सरदार पटेलको कांग्रेसका "कठोर घूंसा", राजेन्द्रबाबूको "कोमल हृदय" और मौलाना साहेबको "मस्तिष्क और आत्मप्रकाश" पुकारा है। निस्सन्देह राष्ट्रपति मौलाना-आजाद हमारे राष्ट्रीय जीवनके मस्तिष्क रूप हैं।

इस मस्तिष्क रूपी नेताकी बौद्धिक बनावट भी बड़ी ही ओजस्वी है। वह जन्मजात लेखक और पत्रकार हैं। लगभग १४ वर्षकी अवस्थामें ही उन्होंने 'लिसानुस सिद्क' (सच्चाईकी पुकार) का सम्पादन शुरू किया। ऐसा कोई विषय नहीं था जिसपर उनका अधिकार न हो, ऐसी कोई समस्या नहीं थी जिसपर उन्होंने कलम न उठाई हो। निर्भीक सत्य वक्ताका उनमें विशेष गुण है। मजेकी बात यह है कि मौलाना साहेबकी लेखनी विद्वानों-की दुनियामें हलचल पैदा कर रही थी परन्तु लोगोंको यह पता नहीं था कि यह सब केवल एक छोटेसे बच्चेकी ही करामात थी। ख्वाजा अलताफहुसेन हाली जैसे धुरन्धर विद्वान द्वारा लिखे हुए सर सैयद अहमदखांके जीवन चरित्रकी जब उन्होंने जोरदार समालोचना की तो सहसा विद्वान मण्डलीकी आंखें उस समालोचककी ओर फिर गयीं। सन् १९०४ ई० की बात है। 'अनजुमन-ए-हिमायत-ए-इस्लाम' का लाहौरमें वार्षिक अधिवेशन था। देशभरके धुरन्धर आलिम और फाजिल लोगोंका जमाव था। 'लिसानुस सिद्क' के विद्वान सम्पादकको सभापति चुनकर वार्षिक भाषण पढ़ने का अनुरोध किया गया।

भाषणका विषय था "धर्मका बौद्धिक आधार।" बड़ी-बड़ी टोपीवाले, बड़ी-बड़ी पोथीवाले, लम्बी अचकन, लम्बी पदवी, दाढ़ी और उम्रवाले, एकसे एक प्रसिद्ध विद्वान थे। उन सबका सभापतित्व करनेके लिये 'लिसानुस सिद्क' के सम्पादक आ रहे थे। ये बहुरङ्गी, बहुख्याति धारी विद्वान अभीतक 'लिसानुस सिद्क' के सम्पादककी शुहरतके तो कायल हो चुके थे पर शकलसे आशना नहीं थे। मौलाना साहेब सामने आये तो उनके विस्मयका ठिकाना न रहा। हालीसाहेबने तो (जिनकी पुस्तककी समालोचना मौलानासाहेब कर चुके थे) यह समझा मौलाना आजाद स्वयं मौलाना आजाद नहीं, मौलाना-अरजादके लड़के थे। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि वह आजाद साहेबके लड़के नहीं, वह लड़का ही स्वयं मौलाना आजाद था तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। भला किसे आश्चर्य न होगा ? बुजुर्गी और विद्वताकी झुर्रियों तथा सुफेद बालवाले देशके प्रख्यात विद्वानोंको केवल एक १५-१६ वर्षका उठता हुआ युवक रास्ता दिखायेगा—यह उनके कल्पनाके बाहरकी बात थी। परन्तु हुआ ऐसा ही। उस होनहार युवकने उन बुजुर्ग आलिमोंको रास्ता

दिखाया ही और अपने सारगर्भित भाषणसे उन्हें चकित कर दिया। अन्तमें इस दैविक विभूतिको देखकर हाली-साहेबने कहा—"बच्चेके शरीरमें बूढ़ेकी खोपड़ी जड़ी हुई है।" सचमुच बात यही थी।

भारतके मुसलमानोंने देखा कि उनका एक नया 'रहनुमा' पैदा हो चुका था।

५

मौलाना आजादके पिताने अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षाकी मनाही जरूर की थी, परन्तु विद्याका बहिष्कार नहीं किया था। उन्होंने यह कभी नहीं स्वीकार किया कि गोरोंकी अङ्गरेजी भाषा ही केवल ज्ञानका साधन हो सकती है। अतएव उन्होंने मौलाना साहेबको १६०५ ई० में अल-अजहर विश्वविद्यालयमें अरबीकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिए काहरा भेज दिया। वास्तवमें वह चाहते थे कि मौलाना साहब पूर्ण विद्वान् बनकर संसारमें नाम पैदा करें।

मौलाना साहेब १६०७ ई० में भारत वापस आये। १६०६ ई० में पिताके देहान्तके पश्चात्, एक मित्रकी सलाहसे मौलाना साहेबने व्याकरण और कोषकी सहायता-

से घरपर ही अङ्गरेजी पढ़ना शुरू किया। इस सम्बन्धमें मौलाना साहेबका कहना है कि—"मुझे तनिक भी दुख नहीं कि पिताजीने मुझे अङ्गरेजी स्कूलमें नहीं भेजा। इस प्रकार मैंने अपने ऊपर निर्भर रहकर अपने तरीकोंसे केवल उतनी ही अङ्गरेजी सीखा जितनीकी मुझे आवश्यकता थी।

मिस्र, इराक, तथा सीरिया आदिके सफरने मौलाना साहबके विचारोंको एक नया धक्का दिया था। विदेशसे भारत लौटनेपर उन्होंने देखा बङ्गालके विभाजनके कारण सारे प्रांतमें अशान्तिकी लहर दौड़ रही थी। पैतृक तथा स्वाभाविक सूत्रोंके कारण उनकी सहानुभूति यदि किसीको भी प्राप्त हो सकती थी तो केवल उन्हींको जो षड्यंत्र और दमन पूर्ण अङ्गरेजी शासनके विरुद्ध खड़े थे। हुआ भी ऐसा ही। मौलाना साहेब प्रकृतितः स्वदेशी आंदोलनकी ओर झुक गये। परिणाम यह हुआ कि सरकारका खुफिया विभाग पीछे पड़ गया।

इसीके साथ-साथ एक और शक्ति कार्य कर रही थी, वह थी भारतमें अङ्गरेजी शासन और मुसलमानोंका सम्बन्ध। इसके पीछे एक इतिहास है और उस इतिहासको

समझे बिना मौलाना साहेबकी आगामी गति-विधिको समझाना कठिन होगा।

सन् १८५७ ई० के भारतीय विद्रोहने स्पष्ट रूपसे सिद्ध कर दिया था कि हिन्दू और मुसलमान, भारतीय आबादीके दो महत्वपूर्ण अङ्ग हैं और इन दोनोंके पारस्परिक संघर्ष या सहयोगपर ही हिन्दुस्तानमें अङ्गरेजोंकी हुकूमत बन और बिगड़ सकती है। परिणामतः अङ्गरेजोंने १८५७ ई० से ही तै कर लिया था कि जिस तरह भी सम्भव हो हिन्दू और मुसलमानोंको आपसमें लड़ाते रहना चाहिये। इसका एक तरीका यह भी था कि अङ्गरेजोंने मुसलमानोंका उचित या अनुचित, सभी तरीकों-से पक्षपात् करके हिन्दुओंके विरुद्ध प्रोत्साहन देनेकी चाल प्रारम्भ कर दी।

अङ्गरेजोंकी खुशकिस्मतीसे उन्हें एक अजीब आदमी हाथ लगा जिसे हम आज सर सय्यद अहमद खां के नाम से जानते हैं।

सर सय्यद अहमद खां एक सुशिक्षित और अत्यन्त प्रभाव शाली मुसलमान थे। मुसलमानोंके सच्चे हितैषी होनेके साथ ही वह अंगरेजोंके असाधारण भक्त थे। १८५९

ई० में उन्होंने एक पत्रमें लिखा था—"देशी आदमी (Natives of India) छोटे, बड़े, व्यापारी, दूकानदार, शिक्षित या अशिक्षित, कोई भी हो उनकी अंगरेजोंसे तुलना करने पर वे उसी प्रकार दीखते हैं जैसे गन्दे जानवरोंको खूबसूरत इन्सानके सामने खड़ा कर दिया गया हो।" मतलब यह कि हिन्दुस्तानके "देशी आदमियों" को वह गन्दा जानवर समझते थे और अंगरेजोंको सुफेद देवता। परिणामतः गोरोंने अपने इस हिन्दुस्तानी भक्तको हिन्दुस्तान वालोंके ही खिलाफ़ एक जबरदस्त हथियारके रुपमें इस्तेमाल किया। सर सैयदने मुसलमानोंकी शिक्षाका विशेष कार्य किया है जिसका फल आज हमारे सामने अलीगढ़की मुसलिम युनीवर्सिटीके रूपमें विद्यमान है। भारतकी अंग्रेजी हुकूमतने सर सैय्यदकी उन शिक्षण कीर्तियोंमें भर पूर सहायता दिया क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूपसे देख रहे थे कि सर सैय्यदका कार्य क्षेत्र जितना ही व्यापक होगा हिन्दुस्तानमें उतने ही अधिक गोरे भक्त मुसलमान पैदा होंगे। हिन्दुस्तान अंग्रेजी गुलामीकी जंजीरोंमें बांध कर अविद्याकी भयावह गारमें ढकेल दिया गया था। पढ़ाई—लिखाईका जो क्रम था वह अधिकांश सरकारी

दफ्तरोंके लिए "बाबू" नुमा बैल तैयार करनेके लिए ही। इसका मतलब यह कि उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखों-की अपढ़ हिन्दुस्तानियों पर बड़ी धाक रहती। स्वभावतः सर सय्यदके चक्रसे निकले हुए अंग्रेजी दां मुसलमानोंने देशभरमें एक विचित्र वातावरण पैदा कर रक्खा था।

ठीक इसी परिस्थितियोंमें मौलाना आजाद मिस्रसे भारत वापस आये। एक ओर तो बङ्गालका स्वदेशी आंदोलन उन्हें खींच रहा था, दूसरी ओर सर सय्यदकी गौराङ्ग भक्ति 'जिहाद' के लिए आह्वान करने लगी। वह कदापि नहीं सहन कर सकते थे कि मुसलमानोंमें इस प्रकार शिक्षाकी आड़से निंद्य भावनाओंका सञ्चार किया जाय। एक सच्चा मुसलमान यह कभी सहन नहीं कर सकता था कि इस्लामको हुकूमतका हथकंडा बनाया जाय।

एक ओर तो सैकड़ों देश भक्त गुलामीका अंत करने-के लिए प्राणोंकी आहुति दे रहे थे और दूसरी ओर उन्हें कुचलनेके लिए मुसलमानोंको हुकूमतका अवजार बनाया जा रहा था। इस घृणित परिस्थितिका अंत करना ही होगा, मौलाना आजादको इस निश्चय पर पहुँचनेमें बहुत देर न

लगी । परन्तु उस निश्चयको कार्यान्वित करनेके लिए कौन सा श्रेष्टतम मार्ग होगा, इस उलझनमें कई वर्ष बीत गये । मौलाना आजाद इन दिनों हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे सो बात नहीं । हां इस लक्ष्यकी पूर्तिमें उनका संघटित कार्य कुछ वर्षों बाद ही प्रारम्भ हुआ ।

प्रश्न दो थे—पहले तो अलीगढ़ विचार धाराके विरुद्ध विद्रोह और दूसरे मुसलमानोंमेंसे गौराङ्ग भक्तिका मूलोच्छेदन । इस महत्व पूर्ण कार्यके लिए तैयारियां भी तो करनी थीं ।

समय आते ही मौलाना साहबने 'अल हिलाल' की घोषणा कर दी । 'अल हिलाल' उर्दू का सप्ताहिक पत्र था जिसका उद्देश्य था मुसलिम जगतमें क्रांति पैदा करना । इसका प्रथम अङ्क १ जून सन् १९१२ ई० को कलकत्तेसे प्रकाशित हुआ था ।

मौलाना साहेबकी अवस्था उस समय कुल २४ वर्षकी थी । उस तरुण अवस्थामें 'अल हिलाल' का प्रकाशन आरम्भ करके उन्होंने कितनी महान शक्तियोंको चुनौती दे दी थी, इसका अनुमान निम्न लिखित बातोंसे किया जा सकता है:—मुस्लिम लीगकी स्थापना हो चुकी थी ताकि

मुसलमानोंको कांग्रेस तथा आजादीकी लड़ाईसे संघटित रूपसे अलग रखा जा सके। मुस्लिम लीगके एक प्रमुख निर्माता, अलीगढ़ कालेजके मंत्री, नव्वाब मुश्ताक हुसेनने अपने प्रथम भाषणमें ही घोषणा की थी इस्लामकी तलवार सदा ब्रिटिश राजकी सेवाओंमें तत्पर रहेगी। अफसोस है उस इन्सान पर! जिसने इस्लामकी पवित्र तलवारको एक विदेशी हुकूमतकी सेवामें पेश करनेकी हुङ्कार ली थी। खैर, मतलब यह कि एक ओर लीगी संघटन बड़े जोरोंसे कार्य कर रहा था और दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियां लग-भग वैसी ही उत्कट हो रही थीं जैसा कि हमने कभी १९३९ ई० में देखा था या इस समय १९४६ ई० में देख रहे हैं। कब, कहां विस्फोट हो जायगा, कब युद्ध छिड़ जायगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐसी परिस्थितियोंमें ब्रिटिश साम्राज्य अपनी भौगोलिक स्थितियोंके कारण अधिकाधिक शक्ति सम्पन्न होनेकी चेष्टा करता है। सैनिक तैयारियां, राजनीतिक चालें और गुटबन्दियां द्वारा अपना पाया मजबूत करना उसका मुख्य ध्येय हो जाता है। इनमेंसे एक यह भी होता है कि जैसे भी संभव और आवश्यक हो भारतको हाथमें रखा जाय। १९१४ ई० के महायुद्धके पूर्व,

१९१२ ई० वाली अंग्रेज हुकूमत भारतमें किसी भी प्रकार की विरोधी भावनाको अच्छी नजरसे नहीं देख सकती थी। सारांश यह कि 'अल हिलाल' को गहरी मुठभेड़ लेनी थी।

'अल हिलाल' बड़ी सज-धज, बड़े रोब-दाबसे सामने आया। चारों ओर तहलका मच गया। अंग्रेजोंने घबड़ाहटके साथ एक नजर उठाई। मुस्लिम जगतमें झंकार पैदा हुई—इस्लामकी असली तलवार झनझनाती हुई बाहर आयी थी। लकड़ीकी नकली, मुलम्मेदार, तलवार लेकर पटेबाजीका खेल दिखानेवालोंमें हलचल पैदा हो गयी। अंग्रेजोंको नव्वाब मुश्ताक हुसेन और मौलाना साहेबकी दो तलवारोंका अंतर समझनेका मौका पैदा हुआ—एक थी ब्रिटिश राजकी सेवाओंके लिए और दूसरी ब्रिटिश राजका खात्मा करनेके लिए।

'अल हिलाल' के एक-एक अङ्कको देखकर विरोधियोंने मौलाना साहेबको समझना शुरू किया। न जाने कितनोंकी नींद हराम हो गयी और ज्यों-ज्यों उनकी बेचैनी बढ़ने लगी मौलाना साहेबने और भी जोर से ललकारा—

वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आस्मां!
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिलमें है?

६

कुछ सप्ताहमें ही 'अल हिलाल' का प्रभाव देशभरमें फैल गया। छः मास भी नहीं बीते कि ग्राहक संख्या ११ हजार हो गयी। जहां यह पहुँचता झुण्डके झुण्ड लोग इसके पढ़नेके लिए टूट पड़ते। केवल इसीके पढ़नेके लिए जगह-जगह वाचनालय खुल गये। धीरे-धीरे देशसे बढ़कर विदेशोंमें भी इसका प्रभाव फैला। मुसलमानोंमें एक नयी लहर दौड़ने लगी। अलीगढ़वाले अपनी लुटिया डूबती देखकर हताश हो गये।

पहले तो लोगोंने 'अल हिलाल' का विरोध किया, परन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये उन्हें मौलाना साहबकी अचूक सच्चाई, विद्वता और राजनीतिक दूरदर्शिताका कायल होना पड़ा और उन्होंने अपना रवइय्या बदलना शुरू कर दिया। हकीम अजमल खां और जस्टिस सर वजीर हसन उन बदलने वाली हस्तियोंमेंसे विशेष प्रभाव शाली व्यक्ति थे। जस्टिस सर वजीर हसनने सारे देशमें दौरा करके मुस्लिम लीगके विरोधी और प्रतिक्रियावादी दृष्टि कोणको बदलनेकी चेष्टाकी और कलकत्तामें मौलाना

साहबसे मिलनेके पश्चात् १९१३ ई०.में मुस्लिम लीगके लखनऊ अधिवेशनमें लीगके विधानमें "ब्रिटिश राजकी वफादारी" के स्थानमें "भारतके लिए उपयुक्त स्वशासन" का समवेश किया गया।

यह था उस पचीस वर्षीय नवयुवक मुसलमान, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद और उसके 'अल हिलाल' का प्रभाव। अंग्रेजी सरकारकी "राज भक्ति और वफादारी" में पले और बढ़े हुए बड़ी-बड़ी पदवी, बड़ी-बड़ी अचकन और दाढ़ीवाले दकियानुस हिल गये क्योंकि मुसलमानोंकी रहनुमाईका जिम्मा एक सच्चे मुसलमानने ले लिया था।

परन्तु इन सबका अर्थ यह नहीं कि मैदान बिल्कुल साफ हो गया। पुराने विचारोंको त्यागना उसी प्रकार कठिन है जैसे अफीमचीको अफीम छोड़ते हुए कष्ट होता है। परिस्थितियोंका तकाजा था कि "ब्रिटिश राजकी सेवाओं" का ठेका खतम करके देश और कौमकी कसम खायी जाय लेकिन लीगी भाइयोंको उन सेवाओंके आनन्द-को त्याग देना अप्रिय प्रतीत हुआ। परिणामतः लीगके विधानमें परिवर्तन जरूर किया गया परन्तु "आजादी" के बजाय "स्वशान" (Self Covernment) और उसमें भी

"उपयुक्त" की दुम लगा दी गयी। मौलाना आजादको लीगियोंके इस मतलब भरी "उपयुक्त" का विशेषण उसी प्रकार मालूम हुआ जैसे बहुत पीनेवाले थोड़ी-थोड़ी छानते रहनेका वादा करें। परन्तु मौलाना मुहम्मद अलीने साफ़ कह दिया कि हम अङ्गरेजोंकी वफ़ादारीसे बाज नहीं आ सकते। मौलाना आजादके विरोधी अलीगढ़ गुटवाले यह वही मौलाना मुहम्मदअली थे जिन्होंने आगे चलकर कराची षडयन्त्र और फिर गांधीजीके साथ खिलाफ़त आन्दोलनमें शुहरत कमानेके पश्चात् कांग्रेससे अलग हो गये थे।

सन् १९१४ ई० का भयावह वर्ष जनवरी, फ़रवरी, मार्च, एक-एक महीनेकी तेज डग भरता हुआ अभी अगस्तके मनहूस दरवाजेपर पहुँचा ही था कि युरोपके नभमण्डलपर वर्षोंसे मंडराते हुए खूनी तूफ़ानके बादल फट पड़े। मौलाना मुहम्मदअली जैसे लीगी राजभक्त भी अङ्गरेजोंकी कसौटी पर पूरे नहीं उतरे। परन्तु मौलाना आजाद तो शेरोंकी अपनी उसी अडिग चालसे चलते जा रहे थे। सरकारको उनकी निडर लेखनीसे भय और शङ्का हो रही थी और वह बेचैनीके साथ 'अल हिलाल' पर

नजर रखने लगी। उसके उच्च कोटिके लेख और चुनी हुई ताजेसे ताजे समाचारों तथा अन्य आकर्षणोंके साथ विद्वता पूर्ण और विचारोत्तेजक सम्पादकीय टिप्पणियां अच्छेसे अच्छे अंग्रेजी अखबारोंको भी मात कर रही थीं। परिणामतः 'अल हिलाल' दिन दूनी, रात चौगुनी गतिसे आगे बढ़ने लगा। इसकी ग्राहक संख्या २५ हजार तक पहुँच गयी। भारतका कोई कोना नहीं था जहां उसकी पहुँच न रही हो। मुसलमानों पर उसका जबरदस्त प्रभाव फैल गया। 'अल हिलाल' के प्रभावका मतलब था स्वयं मौलाना आजादका असर।

अन्तमें सरकारने अधिक इन्तजार करना खतरनाक समझ कर फन्दा फेंक ही दिया। ७ अप्रैल, १९१४ ई० को मौलाना साहेबको पञ्जाब, संयुक्त प्रान्त और मद्राससे निष्कासित करके उन्हें रांचीमें नजर बन्द कर दिया गया। जनताके जीवनसे एक सच्चे नेताको अलग कर दिया गया।

१९१५ ई० से १९२० ई० के दिन एक-एक करके अंग्रेजोंकी नजर बन्दीमें ही कट गये। इस नजर बन्दीमें मौलाना साहेब निश्चिन्त पड़े सो रहे थे, सो बात नहीं।

रांचीमें प्रति शुक्रवारको मौलाना साहेब मस्जिदमें जाकर नमाज पढ़ते और लोगोंको उपदेश देते। प्रति दिन कठोर अध्ययन और मननमें बीतता। यहीं उन्होंने अपने मूल्यवान संस्मरण लिखे हैं जो 'तजकिरा' के नामसे प्रकाशित हुआ। कुरान शरीफकी टिप्पणी भी उन्होंने यहीं लिखना आरम्भ किया था।

सरकारी सायेमें वह भविष्यकी तैयारी कर रहे थे।

गांधीजी साल भरके कठिन रोगसे मुक्त हो चले थे। मौलाना साहेब नजरबन्दीसे छूटकर बाहर आये तो यह १९२० ई० का वर्ष था। महायुद्धके नारकीय रक्तपात और संहारसे निकलकर विश्वके साथ ही बेचारा गुलाम भारत भी शान्ति और स्वातंत्र्यकी कामना कर रहा था। परन्तु अबतक उसने अपने गौरांग प्रभुओंके लिये खून बहाये थे। अब उसे स्वयं अपनी आजादीके लिए रक्ततर्पण करना पड़ा।

अपने बलिदानोंके बदले जब दासकी बेड़ियां कटनेके बजाय उलटे 'रौलट ऐक्ट' के पातक बन्धनोंसे कसी जाने

लगीं तो बेचारी गुलामी भी बिलबिला उठी। हिन्दुस्तान-के खूनसे ही साम्राज्यवादके मसाले तैयार करनेवाली हुकूमत हिन्दुस्तानको 'भरसक' खाना नहीं चाहती, बेचारे भोले-भाले गुलामोंको यह बात मालूम ही नहीं थी। मुसीबतमें फंसे हुए मालिकके दर्दको देखकर उन्होंने जर्मनी, फ्रांस, अफ्रीका, अरब, तुर्किस्तान, चारों ओर घूम घूमकर रक्त और धनकी नदी बहायी थी। परन्तु उसका उपहार यह मिला कि दुश्मनोंसे निजात मिलते ही मालिकने और भी गहरी गांठ देना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि सब्रका बांध टूट गया। उत्तरसे दक्षिण, पूरबसे पच्छिम, सारे देशमें घोर अशान्ति छा गयी। फिर भी विश्वासघातका उत्तर लोग प्रहारसे नहीं, अहिंसा और सत्याग्रहसे ही दे रहे थे। परन्तु अङ्गरेजी हुकूमतके ठेकेदारोंको इतना भी गवारा नहीं था। गोली और संगीनों से उन्होंने प्रजाका इस प्रकार वध शुरू कर दिया मानों वह जंगलमें जानवरोंका शिकार खेल रहे थे। बेगुनाह स्त्री-बच्चोंकी निहत्थी भीड़ पर भी जालिमोंकी मशीनगनें मृत्युकी वर्षा करने लगीं। कहां तक लिखें, बर्बरताकी उस लज्जाजनक और घृणास्पद स्मृति मात्रसे खूनमें उबाल

आने लगता है। यह अङ्गरेजोंके वह काले कारनामे हैं जिन्होंने सर सय्यदके लगाये हुए वफादारीके मजबूत पौधेको भी उखाड़ फेंका। मौलाना मुहम्मदअली जैसे हुकूमतके सच्चे हिमायती भी विरोधी दलमें जा खड़े हुए।

पंजाबके हत्याकाण्डके साथ ही खिलाफतका भी मसला पैदा हो गया था। हिंदू और मुसलमान--दोनोंके सम्मुख केवल यही प्रश्न था कि अंग्रेजी हुकूमतसे गला कैसे छूटे। इसका सीधा सादा मतलब यह था कि सदियों से गुलामीकी चक्कीमें पिसते हुए निःशस्त्र देशको दुनियाकी सबसे बड़ी सशस्त्र हुकूमतके खूँख्वार पञ्जोंसे छुटकारा पाना। स्वभावतः जब युग पुरुष गांधीने छुटकारेके लिए अहिंसा और असहयोगका मंत्र दिया तो देशभरके मुसलमान नेताओंने आजादीकी इस अपरिचित रण नीति पर बड़ी गंभीरता पूर्वक विचार किया। मौलाना अबुल कलाम आजाद उनमें सबसे अधिक विद्वान और प्रभावशाली व्यक्ति थे। वह भली-भांति समझते थे कि आजादी भीखसे नहीं, लड़कर ही हासिलकी जाती है। लड़ाईका तरीका भी गांधीजीके असहयोग और सत्याग्रहसे बढ़कर दूसरा कोई हो नहीं सकता था। परिणामतः मौलाना साहबने लोगोंको

दृढ़तापूर्वक गांधीजीका अनुसरण करनेको कहा और हिन्दू मुसलमान सब चल पड़े।

१९२०-२१ ई० का सत्याग्रह! युद्ध छेड़ दिया गया था। सारे देशमें सभा और जलूसों द्वारा लोगोंने अपना रोष प्रकट किया। वकीलोंने वकालत, विद्यार्थियोंने स्कूल और कालेज, हजारोंने सरकारी नौकरियोंको लात मार दिया। धन-जनसे लोगोंने भरपूर सहायता दी। स्त्रियोंने अपने बदनके गहने उतारकर भेंट कर दिये।

देशकी इस अद्भुत जागृतिमें मौलाना साहेबने बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया था। उनके ओजस्वी भाषणोंसे मंत्रमुग्ध होकर जनताने बड़ी तेजीसे कदम बढ़ाया। जनता ही नहीं, विद्वान और धर्माधिकारियोंने भी उनके प्राण-प्रेरक नेतृत्वको स्वीकार किया। लाहौरमें हिन्दुस्तान भरके आलिम और मौलवी एकत्रित हुए और उन्होंने एक विशेष धर्म सभा द्वारा मौलाना-साहेबको इमाम नियुक्त करनेके प्रस्ताव किया। इमाम अर्थात् हिन्दुस्तान भरके मुसलमानोंका सर्वोच्च धर्मगुरु! कितना पवित्र, कितना गौरवपूर्ण वह पद है। मौलाना साहेब उसके बाद ही गिरफ्तार कर लिये गये और जब १९२३ ई० में छूटकर

वह बाहर आये तो पुनः उनसे प्रार्थना की गयी, परन्तु उन्होंने बड़े आदर और कृतज्ञता पूर्वक उस पदको अस्वीकार कर दिया।

उस पदकी पवित्रतासे मौलाना साहेबके त्यागकी महानता कम नहीं है। इस बातसे स्पष्ट हो जाता है कि मौलाना साहेबके लिये संसारका बड़ासे बड़ा पद भी कोई आकर्षण नहीं रखता। वह सोनेके समान शुद्ध और ध्रुवके समान अडिग हैं। सत्य और सेवा ही उनका जीवन व्रत है।

अपनी आजादीकी कठोर लड़ाईमें भारतने उनसे सदा शक्ति और अचूक नेतृत्व प्राप्त किया है।

इस्लामकी सदाकत और मुल्ककी हिफाजत, दोनोंका एक साथ शायद ही किसी दूसरे नेताने इतनी सफलता पूर्वक संचालन किया हो।

अलीबन्धु महात्माजीके साथ देशका दौरा कर रहे थे। सरकारने मौलाना मुहम्मदअलीको पकड़ लिया। इसने जलती हुई आगमें घीका काम किया। देशभरके

नेताओंने एक संयुक्त घोषणा की। "..........हमारा मत है कि जिस किसी भी व्यक्तिको देशकी लाज होगी वह हर्गिज उस सरकारकी पुलिस, सेना या किसी भी नौकरीमें काम नहीं करेगा जिस सरकारने पुलिस और सेनाका प्रयोग हमारी राष्ट्रीयताको कुचलनेमें किया है, जिसने हमारी ही सेना द्वारा हमारा ही नहीं, उन देशोंका भी खून बहाया है जिनसे हिन्दुस्तानका कोई भी झगड़ा नहीं था। हम चाहते हैं कि यह प्रत्येक हिन्दुस्तानी सैनिक और नागरिकका कर्तव्य हो कि ऐसी सरकारसे वह नाता तोड़ लें।" देशकी इस महत्वपूर्ण घोषणापर गांधीजीके बाद ही मौलाना आजादका हस्ताक्षर था। भारतके सत्याग्रह आन्दोलनमें मौलाना साहेबका कितना गौरवपूर्ण और ऊँचा, कितना पवित्र और प्रेरक स्थान है, इसी एक बातसे स्पष्ट हो जायगा।

इसी समय 'प्रिन्स आव् वेल्स' भारत आये। देशमें आग लगी हुई थी। जनता अशान्त और आतुर थी, डायरका जुल्म और सैनिक शासन बर्बरताका अट्टहास कर रहा था। चारों ओर भूख और दरिद्रताका रोमांचक दृश्य व्याप्त था। परन्तु सरकार प्रिन्स आव् वेल्सके

स्वागतमें जनताके एक-एक बूँद खूनसे बटोरे हुए धनको नाच, रंग और आतशबाजियोंमें उड़ा देनेपर तुली हुई थी। प्रिन्स आव् वेल्सपर नहीं, सरकारकी पाशविक निर्लज्जतापर देश क्षुब्ध हो उठा, घृणाकी असीम लहरें ऊफान मारने लगीं। चारों ओर बहिष्कारके काले बादल छा गये। बहिष्कारको असफल कर देनेके लिए सरकारने स्वयं-सेवक दलोंको गैरकानूनी घोषित कर दिया। परन्तु जब सरकार ही अमान्य थी तो उसके कानूनोंको कौन पूछता था? छोटोंकी कौन कहे देशके शिरमौर नेता भी स्वयं-सेवक दलमें भरती हो गये। भरती ही नहीं, उनके नाम भी अखबारोंमें प्रकाशित कर दिये गये। संयुक्त प्रांतकी सूचीमें यदि पण्डित मोतीलाल और जवाहरलाल सबसे ऊपर थे तो बङ्गालमें मौलाना आजाद और देशबन्धु चितरञ्जनदास थे।

हजारों लोग जेलोंमें ठूँस दिये गये। मौलानाको नजरबंदीसे छूटे अभी कितने दिन हुए थे? एक बार पुनः उन्हें पकड़ लिया गया। मुकदमा चला, सजा हुई। उस मुकदमेके सम्बन्धमें मौलाना साहेबने जो लिखित बयान दिया था वह विद्वता और आजादीकी वकालतमें भारतीय

इतिहासका एक महत्व पूर्ण पत्र है। मौलाना साहेबने उसमें लिखा है—"......मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं देशके उन अगुओंमेंसे हूँ जिन्होंने राष्ट्रके हृदयमें विद्रोहका बीज बोया है और अपना सारा जीवन ही इस पवित्र विद्रोहको बढ़ाते जानेके लिए बलिदान कर दिया है।......मेरा विश्वास है कि आजादी मनुष्यका नैसर्गिक अधिकार है।......गुलामी गुलामी ही है। यह ईश्वरीय न्यायके बिल्कुल विरुद्ध है। 'सुधार' और 'धीरे-धीरे स्वराज' की मक्कारियोंमें फँसकर मैं धोखा नहीं खा सकता। मनुष्य और हिन्दुस्तानी होनेके नाते मेरा धार्मिक कर्तव्य हो जाता है कि गुलामीसे पिण्ड छुड़ा लूँ। मैं मुसलमान हूँ और मुसलमान होनेके नाते गुलामीमें पलते रहना मेरे लिए गुनाह है। इस्लामने कहीं भी गुलामीकी हिमायत नहीं की है।......"

सारांश यह कि मौलाना साहबका भाषण, आदिसे अन्ततक, उसका एक-एक शब्द जालिम सरकारके विरुद्ध खुला विद्रोह है। साथ ही साथ उसमें इस्लाम और आजादीके सिद्धान्तोंका महत्वपूर्ण विवेचन है। इसमें यदि जैसा कि गांधीजीने कहा है, आजीवन कारावासका दण्ड

कमाने भरकी ताकत है तो साथ ही साथ कितने ही 'काफिरों' में 'ईमान' पैदा कर देनेका जोर भी है।

६

गुलामी भी महापातक रोग है, वह भी हिन्दुस्तान जैसी सदियोंकी पुरानी गुलामी! उफ। इसका विष उतर उतर कर चढ़ जाया करता है।

जलियान वाला बागमें हिन्दू-मुसलमानोंको एक साथ जबह करके डायरने अङ्गरेजोंके हकमें अच्छा नहीं किया। दोनोंका खून आपसमें मिल गया और उसके असरको दूर करनेके लिए सरकारको एड़ी चोटीका पसीना एक कर देना पड़ा परन्तु शाबास! उतरे हुए विषको पुनः दिमाग-तक पहुँचा दिया गया और मरीज एक बार फिर डाक्टरों-के हाथमें खेलने लगा और ऐसा खेला कि इन्सानियतको भी शर्मसे मुँह छिपा लेना पड़ा। जरा सा ढोल पीट दो और हिन्दू-मुसलमान लड़ने लगे। यही वे गुलाम थे जिन्हें जलियानवालामें एक ही छुरीसे जबह किया गया था?

आखिरकार गांधीजीसे सहन न हुआ। उन्होंने

गुलामीके नशेमें बेखबर सोनेवाले हिन्दुस्तानको जगाया था और जब जाग कर वे बन्दरको छोड़कर आपसमें ही भूखी बिल्लियोंके समान लड़ने लगे तो महात्माको असह्य वेदना हुई। मूर्खों के पापका महात्माने स्वयं प्रायश्चित्त करनेका निश्चय किया। दिल्लीमें २१ दिनके अनशनका कठोर व्रत उन्होंने धारण कर लिया। सारे देशमें सनसनी फैल गयी। देश भरके नेता दिल्लीकी ओर दौड़ पड़े। हिन्दू-मुसलमानोंके मेल जोलकी समस्या हल होने लगी।

१९२४ ई० का वह 'शान्ति-सम्मेलन'! सिर पर 'भूत' और नसोंमें विषके जोरसे आस्तीन और पायंचे चढ़ा-चढ़ाकर लड़ने दौड़ने वालोंको फिरसे गले मिला देना किसी मामूली ताकतका काम न था। और आज २२ वर्षके पश्चात् जिन लोगोंको उस 'शान्ति सम्मेलन' की याद है वह जानते हैं कि वह ताकत उसी सच्चे मुसल-मान नेताने पैदा की थी जो आज हमारा राष्ट्रपति है।

मौलाना अब्दुल कलाम आजादके उस दिव्य व्यक्तित्वके पीछे मुल्क और मजहबका बहुत पुराना, सदियोंका पुराना, इतिहास विद्यमान है। आज हिन्दू-मुसलमानोंकी आँखोंपर एक बार फिर अँधेरा छा गया है।

कुछ अधिक नहीं उन्हें केवल मौलाना साहेबके इतिहासपर एक बार गौरसे नजर डाल जानी चाहिये।

गुलामीकी इन कठिनतम घड़ियोंमें सारी खुराफातोंके बावजूद भी हमें राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आजादका अचूक और अडिग नेतृत्व प्राप्त है। उस नेतृत्वपर भारतको गर्व है।

१०

अंग्रेजी राजमें स्कूलोंसे बढ़कर जेलोंने काम किया है। बहुतोंको वहाँ शान्ति और सिद्धिका सुअवसर प्राप्त हुआ है। तिलकका 'गीता रहस्य,' आजादका 'तरजुमानुल-ए-कुरान'—यह सब सरकारकी हिरासतमें ही तैयार हुए थे।

'तरजुमानुल-ए-कुरान' में कुरान शरीफका अनुवाद और उसपर मौलामा साहेबकी गवेषणापूर्ण टिप्पणी है। पुस्तकके प्रारम्भमें मौलाना साहबकी विस्तृत प्रस्तावना है जिसे वास्तवमें इस्लामको समझनेके लिए मौलाना साहेब की खुर्दबीन (Microscope) ही मानना होगा। यह अपूर्व ग्रन्थ रांचीकी नजरबंदीमें लिखा गया था। स्मरण

रखनेकी बात है कि मौलाना साहबकी प्रकाण्ड विद्वताका हिन्दुस्तान ही नहीं, अरब, मिस्र, तुर्किस्तान, सभी मुस्लिम देशोंके विद्वान और धर्माधिकारियोंमें मान है। अतएव 'तर्जुमानुल-ए-कुरान' के द्वारा हमें इस्लामका सच्चा ज्ञान तो प्राप्त होता ही है, स्वयं मौलाना साहेबका धार्मिक दृष्टिकोण समझनेमें भी हमें अचूक सहायता मिलती है।

हम दावेके साथ साथ कह सकते हैं कि कुरान शरीफ-को समझने और समझाने वाला तर्जुमानुल-ए-कुरान' से बढ़कर प्रामाणिक और तर्कयुक्त दूसरा ग्रन्थ उपलब्ध होना कठिन है। आप एक ओर 'गीता रहस्य' और दूसरी ओर 'तर्जुमानुल-ए-कुरान' को रख लें और आपको दोनोंमें उसी एक परम तत्व, सच्चिदानंद परमेश्वरकी अनादि और अनंत सत्ता नजर आयेगी जो भिन्न-भिन्न देशोंमें, भिन्न समाज और भिन्न युगोंमें विभिन्न रूपसे अपनायीं गयी है। यह विभिन्नता मूल सत्यकी नहीं है। वह तो सदा, सर्वदा, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, वेद, कुरान, बाइबिल— सर्वत्र एक समान है। विभिन्नता तो देश-कालके भेदसे उसके व्यवहारमें होता है। भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न

जल,वायु और परिस्थितियोंमें प्रकृतितः विभिन्न प्रकारके समाज और उनके स्वभाव भी विभिन्न प्रकारके होंगे ही। अतएव उसी एक सत्यके व्यवहारमें यदि विभिन्नता उपस्थित हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मतलब यह कि यदि मुसलमान अजान देते हैं और हिन्दू प्राणायाम करते हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि दोनों दो ईश्वरके बन्दे हैं। दोनों हैं एक और रहेंगे भी एक। केवल पाजामा और धोती, अथवा दाढ़ी और चोटीके फरकसे उनका खुदा, उनकी कौमियत (राष्ट्रीयता) नहीं बदल सकती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तर्जुमानुल-ए-कुराननें केवल इस्लामका दिव्य रूपही नहीं प्रस्तुत किया है बल्कि धर्मके नकशेके इन्सानकी असलियत और उसकी राष्ट्रीयता-का रहस्य भी प्रकट कर दिया है।

परन्तु खेद है कि उसे केवल विद्वानोंकी निधि समझ-कर एक ओर रख दिया गया है। उनमें लाखों परचे और प्रचारसे भी अधिक बल है और आवश्यकता है कि हिन्दू-मुसलमानकी समस्याको सफलता और संतोषपूर्वक हल करने के लिए इस अपूर्व ग्रन्थकी प्रतियां घर-घरमें पहुँचा दी जायँ।

खैर, 'तर्जुमानुल-ए-कुरान' की चर्चा करके हम

केवल यही दिखलाना चाहते हैं कि मौलाना साहेबके लिए मन्दिर और मसजिद, हिन्दू और मुसलमान दोनों एक समान हैं। वह सच्चे मुसलमान हैं और इसीलिए सच्चे हिन्दुस्तानी हैं। हिन्दुस्तानने उनकी हिन्दुस्तानियत से बड़े गाढ़े वक्तोंमें बल प्राप्त किया है।

११

बुखारिनने ही, शायद, अपने 'लेबर ऐण्ड वायलेन्स' नामी ग्रन्थमें कहीं मनुष्य मात्रको तीन वर्गोंमें बांटा है:— (१) 'प्राफेट' अर्थात् पैगम्बर या महापुरुष। (२) 'प्रचिर' अर्थात् इमाम या गुरू। (३) 'फालोवर्स' अर्थात् 'उम्मत' या पीछे पीछे चलने वाले शेष लोग।

मौलाना साहेब इस्लामके सच्चे इमाम हैं, यह कोई कहने-सुननेकी नहीं सर्वसिद्ध बात है। अपने पाण्डित्य, अपने बौद्धिक स्तरकी दृष्टिसे वह अपने अनुयायियोंसे अलग और ऊँचाईपर अवश्य नजर आते हैं। परन्तु हैं वह अपनी 'उम्मत' के ही इमाम, अपने अनुयायियोंके ही नेता। पण्डित जवाहर लालके समान वह जनताके जीवन-में साक्षात् समा जानेवाले जीव भले ही न हों, परन्तु

सिरके समान धड़से अलग और ऊँचे रहकर भी उनका धड़से अभेद्य अस्तित्व है। हमने जबसे देखना शुरू किया है वह सिरके समान धड़के ऊपर सदा धड़में लगे हुए मिले हैं। निस्संदेह मौलाना और भारतका सिर और धड़का ही सम्बन्ध रहा है। अपने इस स्वातन्त्र्य युद्धकी शिथिल-तम् या प्रचण्डतम्, प्रत्येक दशाओंमें हमने अपने मौलानाको सदा आंखें खोले हुए हमें रास्ता दिखानेके लिए, एक समान, जागरुक और सचेष्ट पाया है।

अरबके धार्मिक वातावरणमें पैदा हुए, मिस्रके विश्व विद्यालयमें शिक्षा पायी, भारतके संघर्षमय जीवनमें पले और बढ़े। अतएव आपका दृष्टिकोण स्वभावतः सार्व-भौमिक है। वह किसी भी देश, किसी भी धर्मवालोंके बीच बड़ी आसानीके साथ अपना स्थान बना लेते हैं।

कुरान शरीफका भी जिसने आधी-अधूरी वह भी अङ्गरेजी अनुवादोंसे ही खबर सुनी हो, रोजा नमाजके जो पास भी न जाता हो, अरबी कौन कहे उर्दू का भी जिसे इल्म न हो, अंग्रेजी वकालत जिसका पेशा और अंगरेजी ताकत ही जिसका भरोसा हो, हिन्दुस्तानी शकलपर अंग्रेजी पोशाक ही जिसकी पहचान हो—मौलाना साहेब

ऐसे झूठे मुसलमान और गलत नेता नहीं हैं। वह सीधे-सादे, सच्चे और धर्माधिकारी मुसलमानके पुत्र हैं जिसके खानदानके पीछे सदियों पुरानी इस्लामकी दिव्य ज्योति जगमगा रही है।

मौलाना साहेब उस आडम्बर हीन पिताके पुत्र हैं जिसने बड़ीसे बड़ी हस्तियोंका भी मसनद और सोफेपर नहीं, सादीसी चटाईपर ही स्वागत किया था। परिणामतः सादगी मौलाना साहेबके रक्त और मांसमें भर गयी है। खादीमें लिपटी हुई उस सादगीमें एक अद्भुत तेज है जिसके सामने हजारों झुककर चले गये हैं।

मौलाना साहेबका कहना है धर्म जो मानवताको महान न बनाये, धर्म जो मनुष्यको शक्ति और गति न प्रदान करे, धर्म जो इन्सानमें मुहब्बत और देशका दर्द न पैदा करे, धर्म जो गुलामीसे बगावत करना न सिखाये, वह धर्म नहीं पाखण्ड है, फरेब और शैतानियत है। मौलाना साहेबके पिछले आधी सदीके पूरे इतिहासको उलट जाइये लेकिन वहां कहीं भी यह नहीं मिलेगा कि उन्होंने मुसलमानोंको केवल मुसलमान होनेके नाते उतनी फीसदी सरकारी नौकरियाँ हासिल करनेकी सलाह दी हो।

धर्म यदि केवल नौकरी प्राप्त करनेका साधन मात्र रह जाय तो वह धर्म नहीं 'ट्रामवे' का टिकट है जिसे दिखा कर अन्दर बैठ रहनेकी आज्ञा मिल जाती है। धर्म जो इन्सान-इन्सानके बीच दुश्मनीका जहर फैलाता है वह धर्म नहीं धोखा है "सी. आई. डी." वालोंकी शरारत है। मौलाना साहेबने एक नहीं हजार बार, हजार तरहसे, धर्म को इस प्रकार जलील करनेवालोंको फटकारा है। 'तर्जु-मानुल-ए-कुरान' में इस्लामका जो सौम्यरूप उन्होंने प्रस्तुत किया है। वह मन्दिरमें भी 'अल्लाहो अकबर' की प्रतिध्वनि पैदा करनेके लिए यथेष्ट है। कौन ब्राह्मण है जो इस मौलवीके सामने नतमस्तक न हो जायगा? ऐसे पवित्रात्माके हाथमें बागडोर हो फिर भी 'इस्लाम खतरेमें है' की कायर पुकार सुनकर हमें शर्मसे सिर नीचा कर लेना पड़ता है।

जो धर्म मनुष्यको वीर नहीं कायर बनाता है वह धर्म हो ही नहीं सकता। धर्म जो इन्सानको इन्सानसे डरना सिखाये वह धर्म नहीं चोरोंका षडयंत्र है। मौलाना साहेब आश्चर्यके साथ पूछते हैं कि ३० करोड़ हिन्दू ८-९ करोड़ मुसलमानोंको कैसे गुलाम बना सकते हैं? एक, दो, हजार

लाख नहीं, करोड़ों मुसलमानोंको हिन्दू लोग हड़प जायेंगे ? आदमी नहीं, मानों भेड़-बकरी हो गये जिसे लोग मार-काट कर खा जायेंगे। इस्लाम हर्गिज इन्सानको इतना कायर नहीं बना सकता। मौलाना साहेबका धर्म वीरोंका धर्म है जो शत्रुओंके बीच भी अभयदान देता है, उसे विदेशियोंके सहारेकी जरूरत नहीं।

भारतको ऐसे ही मुसलमानोंकी आवश्यकता है जो हिन्दुओंकी लड़खड़ाती हुई टांगोंमें भी जोर पैदा करनेकी ताकत और ईमान रखता है।

१२

सन् १९२३ ई० में मौलाना साहेब जब जेलसे बाहर आये तो कांग्रेस द्विविधामें पड़ी हुई थी।

चौरी-चौरा काण्डके पश्चात् गांधीजीने सत्याग्रह आन्दोलनको स्थगित करके देशको रचनात्मक कार्य-क्रमकी सलाह दी थी। यहाँ आकर कांग्रेसमें दो दल हो गये। एकका कहना था कि सत्याग्रह भले न हो, परन्तु सरकारसे कोई सम्बन्ध भी नहीं रखा जा सकता। यह पक्ष था राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल और डाक्टर अन्सारी

आदिका। ये लोग सत्याग्रहके स्थगित रहते हुए भी असहयोग और चतुर्दिक बहिष्कारको पूर्ववत् जारी रखना चाहते थे। परन्तु दूसरा पक्ष था पण्डित मोतीलाल, देश-बन्धु सी. आर. दास. और बिठ्ठल भाई पटेल जैसे वकीलों का। इसका कहना था कि सरकारको उसके गढ़में घुसकर ही परास्त करना चाहिए। मतलब यह कि ये लोग धारा सभाओंमें घुसकर कुछ गर्मा-गरम बहस करना चाहते थे जिसे अंग्रेजीमें 'पार्लेमेण्टरी प्रोग्राम' और हिन्दीमें वैधानिक कार्य-क्रम कहा जाता है। निस्सन्देह ये लोग उन "ठण्ढे दिमाग" (लिबरलों) वकीलोंके भाई-बन्धु नहीं थे जो केवल सुरक्षित-राजनीतिको अपनी 'शुहरत' और 'पेशे' का एक हथियार बनाये रहते हैं। ये लोग देशके उन अनमोल रत्नोंमेंसे थे जिनके त्याग और वीरतापर हमें गर्व है, जिनकी सच्चाईमें पूर्ण विश्वास और नियतपर निश्चित भरोसा था, परन्तु 'पार्लेमेण्टरी प्रोग्राम' की पैरवी-में वे कहाँतक ठीक रास्तेपर थे, इस प्रश्नपर अब भी विचार करना होगा।

खैर प्रश्न तो यह पैदा हो गया था कि इन दोनोंके एक बने रहनेमें ही कांग्रेसकी सुरक्षा थी। दोनों अपने-

अपने मतके पक्के थे अतएव समस्या यह उपस्थित थी कि इन दोनोंका कांग्रेसकी छत्रछायामें सम्बन्ध सूत्र क्यों-कर बना रह सकता है ?

मौलाना साहेब इन दोनोंसे अलग थे। उन्होंने साफ़ कह दिया कि हम किसी भी कार्यका केवल उसके गुणों-पर ही निर्णय कर सकते हैं। गांधीजीके असहयोग मन्त्र-में ही उनकी रुचि और विश्वास था, परन्तु उन्होंने यह भी देखा कि यदि दोनों दल एक दूसरेके विरोधी रहेंगे तो केवल इतना ही नहीं कि हिंसा और असहयोग समाप्त हो जायगा, बल्कि यह भी कि अबतकका सारा किया-धरा भी मिट्टीमें मिल जायगा। अतएव उन्होंने निश्चय किया कि दोनोंके भले ही मिलकर एक न हो जायें, पर उन दोनोंके कार्य-क्रम एक तारमें बँधे तो रहें।

मुसलमानोंमें जमायत-उल-उलमाका कट्टर दल था जो एक बार असहयोगकी 'धर्म-घोषणा' (फतवा) करके धारा सभाओंमें प्रवेश करना अधर्म और पाप समझता था। गया कांग्रेसमें भी उन्होंने उसी फतवेको दुहराया था। उस फतवेके रहते हुए समझौतेकी कोई गुञ्जाइश ही नहीं रह जाती थी। अतएव यह मौलाना ही जैसे आलिम

और मौलवीका कार्य था जो दोनोंको सम्मान पूर्वक एक साथ खड़ा कर सकता था।

दिल्लीमें कांग्रेसका एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया और मौलाना साहेबके अद्वितीय वकालत तथा वैयक्तिक प्रभावसे कांग्रेसने निश्चय किया कि जो लोग चाहें धारा सभाओंके अन्दर घुसकर असहयोग आन्दोलन-को सुदृढ़ बना सकते हैं। १९२४ ई० में जेलसे छूटते ही गांधीजीने 'पार्लेमेण्टरी प्रोग्राम' को असहयोग सिद्धान्तोंका संपोषक नहीं बताया, परन्तु इतना तो हम कहेंगे ही कि मौलाना साहेबने कांग्रेसको देशकी कठिन घड़ियोंमें टूटकर दो टूक हो जानेसे बचा लिया था। इस बातको गांधीजीने भी स्वीकार किया।

धारा सभाएँ सरकारी तमाशाघरसे अधिक नहीं सिद्ध हुईं, इसे धारा सभाके भक्तोंने आत्मग्लानिके साथ अनुभव किया। उनकी आँखोंकी पट्टी तो जब खुली जब उन्होंने देखा कि वे धारा सभाओंके माननीय सदस्य और सरकारी सलाहकार बने ही रहे और साइमन कमीशनका विरोध करनेके लिये लाहौरमें लाजपत राय, लखनऊमें जवाहरलाल और पन्तजीको पुलिसके अफसरोंने लाठियोंसे

पीट डाला। छिः छिः ऐसी सरकार और उसकी धारा सभाकी कुर्सियों को। आखिरकार धारा सभाओंको अपनी लाचारीपर शर्म आयी और सम्मानपूर्वक खेल समाप्त कर देनेके लिए उन्होंने सरकारको एक वर्षका अल्टिमेटम दिया कि यदि इस बीच उन्हें औपनिवेशिक स्वराज न मिल जायगा तो वह पूर्ण स्वातन्त्र्यकी माँग करेंगे।

वह भी एक बात थी। माँगनेसे स्वराज मिल जाय तो फिर इतने रक्त और बलिदानकी जरूरत ही क्या? साल भर बीत गये और लाहौर कांग्रेसमें राष्ट्रपति पं० जवाहरलालने पूर्ण स्वातन्त्र्यकी घोषणा कर दी।

कांग्रेसने बड़ी जबरदस्त जिम्मेदारी ऊपर ले ली थी, परन्तु अब खिलाफतका नहीं, केवल भारतकी अपनी अकेली आजादीका प्रश्न था। इस गाढ़े समयमें अली बन्धुओंने गहरा धोखा दिया, देशका साथ देना तो दूर रहा, उसे आगे बढ़नेसे भी भयभीत करने लगे। डाक्टर अन्सारी भी पस्त हिम्मतसे दिखलाई पड़ने लगे। परन्तु देशने पांसा फेंक दिया था और मौलाना साहेबने अडिग और निर्भ्रान्त रूपसे देशका दामन पकड़े हुए लोगोंको बढ़े चलो, बढ़े चलो—आगे बढ़नेके लिए ललकारा।

मौलाना साहेबकी धारणाएँ बिल्कुल पूरी उतरीं। बड़े-बड़े "लीडरों" को आजादीका पेशा भले ही खतरेसे भरा हुआ और नुकसानदेह नजर आया हो, मुस्लिम जनता अब भी गुलामीके बोझका उसी प्रकार दुखानुभव कर रही थी। जैसे पहले। बड़ोंकी गद्दारी, षड्यन्त्र, और दुष्प्रचारोंके विपरीत भी उन्होंने यथेष्ट रूपसे स्वातंत्र्य युद्धमें भाग लिया। केवल सीमा प्रान्तसे ही अकेले हजारों वीर जेलकी जंजीरोंमें बांध लिये गये। अन्य प्रान्तोंका भी ऐसा ही उत्साह-जनक हाल था। अली बन्धु खिसक गये परन्तु डाक्टर अन्सारी अब भी मौजूद थे और जब मौलाना साहेबने उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तो उन्होंने अपनी पूर्ववत् दृढ़ताके साथ उस गुरुतर भारको ग्रहण किया। लाखों कानाफूसी और कुचेष्टाओंके विपरीत भी १९३० ई० के आन्दोलनने सिद्ध कर दिया कि जब आजादीकी सच-मुच लड़ाई छिड़ जाती है तो सभा और अखबारोंकी बहससे निकलकर हिन्दू या मुसलमान दोनों बराबर कन्धेसे कन्धा मिलाये हुए मरते-मरते नजर आते हैं। भारतका सदासे यही इतिहास रहा है। १८५७ ई० के भारतीय विद्रोहमें हिन्दू-मुसलमान, राजपूत, मराठे—सब सम्राट्

बहादुर शाहके सायेमें जा इकट्ठे हुए थे, १६२१ ई० में भी यही हुआ, "सरकारी लीडरों" के भड़काने और बहकानेके विपरीत भी, कुछ इधर-उधर दंगों, बेशक लज्जा-जनक, दंगोंको छोड़कर, जब १६३० ई० का वक्त आया तो हिन्दुस्तानके अन्न, हवा और पानीसे पले हुए सच्चे मुसलमान. सामूहिक रूपसे बराबर अपने हिन्दू भाइयोंके साथ तत्परतापूर्वक लड़ते मरते रहे, इतना ही नहीं, जिन्नाका इलहाम हो चुका था फिर भी १६४२ ई० का अबतक जो आधा अधूरा इतिहास हमें मिल सका है उससे यही पता चलता है कि मुसलमान उस वक्त सो नहीं रहे थे। सन् '४२ के बाद '४६ ई० के चुनाव आन्दोलनने भी यही सिद्ध किया है कि लीगके लिए सरकारी षड़यन्त्र और गवर्नरोंकी बीवियोंकी 'दुपट्टा-मँगनी' के विपरीत भी ४५ प्रतिशत मुसलमानोंने जिन्नाइटसे बिल्कुल अलग, हिन्दुस्तानके पक्षमें ही मत दान किया है। मतलब यह कि मौलाना साहेब एक अटल नेता हैं, केवल इतना ही नहीं, वह मुसलमानोंको जितनी अच्छी तरह समझ सकते हैं भारतमें दूसरा कोई नेता नहीं समझ सकता।

कितने आए और चले गये, कितने मर-खप गये, बड़े-बड़े तूफान उठे, अनेकों परिवर्तन हुए, इर्विन, विलिंगडन, लिनलिथगो, सबने बेचारे दीन-दरिद्र गुलाम भारत की छातीपर गोली और संगीनोंका निर्लज्ज प्रहार किया परन्तु मौलाना आजाद निर्भीक नेताके समान आजादीका तिरंगा झंडा फहराते हुए एक-एक कदम देशके साथ बढ़ाते रहे हैं।

१३

धीरे-धीरे परिस्थितियोंके साथ कांग्रेसकी रणनीति भी बदलती रही है।

सन् १९३७ ई० में, अनेकों वादविवाद और पक्ष-विपक्षके उपरांत, अंतमें कांग्रेसने एक बार पुनः शासन-सूत्र धारण किया। हम मानते हैं कि वह आजादी नहीं, अंग्रेजोंकी गाड़ीमें बैठकर केवल अङ्गरेजी हुकूमतको हिन्दुस्तानकी छातीपर टहलाते रहना था, परन्तु था भारी काम। यह भारी बोझ हिन्दुस्तानके तीन श्रेष्ठतम व्यक्तियों के ऊपर था—मौलाना आजाद, राजेन्द्र बाबू और सरदार पटेल।

उन तीनोंमेंसे मौलाना आजादने जो किया उसने भारतके हजारों किसानोंको आजादी भले न दी हो—आजादीका वहां सवाल ही कहां था!—सहारा जरूर दिया। गुलामीके मारे हुए, दीन, दरिद्र, रोगी और निराश्रय किसान जमींदारीकी रक्त शोषक चक्कीमें ऐंठ-ऐंठ कर कराह रहे थे। कांग्रेसके सामने प्रश्न था कि जहांतक सम्भव हो उन्हें जमींदारोंके घातक पञ्जोंसे छुड़ाकर जीवनकी आशा और भविष्यमें भरोसा पैदा किया जाय। बिहार और संयुक्त प्रांतोंमें किसानोंकी दशा अत्यधिक दयनीय थी। इस दिशामें मौलाना साहेबने राजेन्द्रबाबू तथा अन्य कांग्रेस नेताओंको लेकर जमींदार और किसानोंके बीच लेन-देनकी एक कार्यकारी पगदण्डी बनानेके लिए जो अथक परिश्रम किया था वह भुलाया नहीं जा सकता। आज १९४६ ई० का अप्रैल मास आधा समाप्त हो चला है, युद्धके पश्चात धूम-धामके साथ चुनावके उपरांत कांग्रेसने प्रांतोंमें मंत्रिमण्डलका सन् ३९ में ठुकराया हुआ वही पुराना ढचरा एक बार पुनः हाथमें ले लिया है और अन्य कार्योंके साथ जमींदारीके पातकरोगको उन्होंने इस बार समूल नष्ट ही कर देनेकी घोषणा की है। वर्तमान प्रांतीय

शासनके तंग दायरेमें वे कहां तक सफल होंगे, और अपने इस कार्यमें वे लगे भी कबतक रहेंगे ?—क्योंकि उन्हें बहुत शीघ्र ही बहुत दूर जाना है—परन्तु जब तक हैं, मौलाना साहेबको एक बार पुनः जमींदारोंके जुल्म और किसानोंके दर्दने आ घेरा है। हम यह मानते हैं कि जब तक धरतीको जोतने बोने, पालने और बनानेवाले दूसरे हों और एक दूसरा ही फालतू व्यक्ति उसका मालिक बना रहे, तबतक रोगका नाश हो ही नहीं सकता। परन्तु हम यह भी जानते हैं कि जमींदारीको समूल नष्ट करनेके साथ ही जमींदारोंके जीवन सुखका प्रबन्ध करना होगा। जमींदार भले ही जमींदार न रह जायें पर राष्ट्रके नागरिक होनेसे उन्हें कोई वञ्चित नहीं कर सकता, और इसीलिए उनकी भी उसी प्रकार आवश्यकताएँ होंगी जैसे किसी भी व्यक्तिकी हो सकती है। कांग्रेसका इससे भिन्न दृष्टि-कोण नहीं हो सकता और जब जैसे संभव होगा मौलाना साहेब प्रस्तुत परिस्थितिके बीच, किसान और जमींदारोंको साथ लेते हुए उसी लक्ष्यतक पहुँचनेकी चेष्टा करेंगे। जमींदारी सम्बन्धी, भूत-भविष्य, मौलाना साहेबकी प्रत्येक कार्यवाहियोंको इसी नजरसे देखनेसे सारी बात बड़ी

आसानीसे समझमें आ जायेगी। उस अल्प कालीन शासन के सरकारी ढांचोंमें कांग्रेसने जो कुछ भी किया उसने यह तो सिद्ध कर दिया ही कि मौलाना साहेब समय आनेपर स्वतंत्र भारतका अद्भुत योग्यतासे सञ्चालन कर सकते हैं।

१४

यह स्पष्ट रूपसे ध्यानमें रखनेकी बात है कि कांग्रेसने १९३५ ई० के 'इण्डिया ऐक्ट' के अन्तर्गत चुनावमें अपूर्व विजय प्राप्त करके जो शासन ग्रहण किया था वह इसलिए नहीं कि इसे वह आजादीका रास्ता समझती थी बल्कि वह केवल इसलिए था कि धारा सभाओंमें घुसकर अंग्रेजी हुकूमतके हथकण्डोंको बेकार किया जाय और जहाँतक सम्भव हो देशके रचनात्मक कार्यक्रमको तीव्र गतिसे आगे बढ़ाया जाय। शासन ग्रहण करने और उसे चलाने के सम्बन्धमें कांग्रेसके अन्दर विभिन्न पक्षोंका पारस्परिक मतभेद भले ही रहा हो, परन्तु कांग्रेसकी मान्यताओंके सम्बन्ध कांग्रेसका प्रत्येक व्यक्ति दुर्भेद्य दीवारके समान एक साथ अटल है।

अतएव युरोपमें युद्ध छिड़ते ही अनिवार्य हो गया

कि कांग्रेस इस सम्बन्धमें भारतके पक्षको स्पष्ट कर दे। रामगढ़ कांग्रेस (मार्च, ४०) में कांग्रेसके अध्यक्ष राष्ट्रपति मौलाना आजदने कहा—"हमारे लिए उन पुराने खतरों (ब्रिटिश साम्राज्यवाद) को भूलना असम्भव था जो इस खतरे (यूरोपके युद्ध) से भी अधिक भयावह सिद्ध हुए हैं। यह खतरा (ब्रिटिश साम्राज्यवाद) हमारे लिए कोई दूरसे दिखलाई पड़नेवाला तमाशा नहीं है। इसने हमारे घरोंमें घुसकर हमारी रोटी धोती, हमारे चूल्हे-चक्की, हमारे सारे जीवनपर ही कब्जा कर लिया है। यही कारण है कि हमने बिल्कुल स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि यदि युरोपकी पेचीदगियोंके कारण युद्ध छिड़ गया तो गुलाम भारत, जो अपनी मर्जी और अपने निर्णयोंसे भी वंचित कर दिया गया है, उसमें कोई भी भाग न लेगा........"

ठीक यही बात थी। जो कुछ किया गया भारतसे विना किसी प्रकारके सलाह-मश्विरे के। यहाँतक कि भारतके सिपाही कटनेके लिये भेज दिये गये और भारत-को पता भी नहीं। यह उस समय जब कि भारतमें भार-तीय जनताके चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा एक प्रकारके

स्वायत्त शासनका दम भरा जा रहा था। ब्रिटिश राजकी नङ्गी तस्वीर सामने आ गयी और कांग्रेस मुँह फेरकर मन्त्रिमण्डलसे बाहर निकल आयी।

कांग्रेसका बाहर आना था कि सरकारके पुराने हथकण्डे एक बार फिर चलने लगे। वास्तवमें पूछा जाय तो सरकारको हिन्दुस्तानमें किसीसे भी डर लगता है तो केवल कांग्रेस से, अतएव आवश्यक हो जाता है कि वह कांग्रेसके खिलाफ एक दूसरी संस्थाको सङ्गठित करके खड़ी रखे जो देशकी गाड़ीको घरेलू दलदलोंमें फँसाये रखनेकी चेष्टा करती रहे। अंग्रेजोंकी यह कोई नयी नीति नहीं, बिल्कुल पुरानी बात है। १८५७ ई० के भारतीय विद्रोहमें जब अंग्रेजोंने देखा कि देशके बड़े-बड़े राजपूत और मराठे राजे-महाराजे नव्वाब और सूबेदार जिस बातको नहीं कर सके वही बात हिन्दू-मुसलमान प्रजाने मिलकर दिया तो उन्हें एक नया सबक मिला। उसी समयसे उन्होंने हिन्दू और मुसलमानोंको आपसमें लड़ाते रहनेका फैसला कर लिया। अंग्रेजी हुकूमतका सारा दारोमदार हमारे इसी कुत्सित मतभेदपर खड़ा किया गया। अंग्रेजोंकी इस गन्दी देनके पीछे एक लम्बा, बड़ा

दर्दनाक इतिहास है जो सर सैयद अहमद और मुस्लिम लीगकी स्थापनासे अबतक बराबर चलता जा रहा है। वह सब न तो इस पुस्तकका विषय है और न इस जीवन-मालाके सरल दायरेमें चित्रित ही किया जा सकता है। हमें केवल उन्हीं अङ्गोंको सुबोध और संक्षेप रूपसे देना है जिसका सम्बन्ध, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, मौलाना साहेबसे है।

अस्तु, कांग्रेसके पद त्याग करते ही जिन्ना साहेबके हुक्मसे ? मुस्लिमलीगने 'मुक्ति दिवस' मनाया। मुक्ति अर्थात् कांग्रेस राजसे छुटकारा। मुस्लिम लीग वालोंका कहना है कि भारतमें मुसलमानोंकी यदि कोई भी प्रतिनिधि संस्था है तो वह एक मात्र मुस्लिम लीग है। इस प्रकार कांग्रेसको वह एक कोरा हिन्दू संघटन बताते हैं। अतएव मुक्ति दिवसका मतलब हुआ मुसलमानोंको हिन्दुओंसे निजात मिली। इस लीगी नीतिके रहस्यको समझनेके पहले यह आवश्यक है कि हम इसमें मौलाना आजादके उत्तरदायित्वको समझ लें।

प्रांतोंमें कांग्रेस शासन एक केन्द्रीय पार्लमेन्टरी बोर्ड-के कठोर अनुशासनमें कार्य करता था जिसके कुल तीन सदस्योंमेंसे एक मौलाना साहेब थे। इसका यही मतलब

हो सकता है कि कांग्रेस बनाम हिन्दू मंत्रिमण्डलोंने मुसलमान जनता पर जुल्म ढाये और वह सब या तो मौलाना आजादके आदेशसे हुआ या कमसे कम उसे उन्होंने रोका नहीं। कितना जबरदस्त मजाक है। मुक्ति दिवसके उत्तरमें मौलाना साहेबने जो वक्तव्य दिया था उसमें मार्केकी बात यह बतायी कि कांग्रेसके पद त्याग करनेके पहले तक जिना या उनके किसी भी गुमाश्ते या नुमाइन्देने, या मुस्लिम लीग अथवा किसी मुस्लिम संस्था या व्यक्तिने ऐसे किसी भी जुल्मकी बाततक नहीं उठाई थी और कांग्रेसके पद त्याग करते ही मुक्ति दिवस मनाया जाने लगा। इसका रहस्य तो यह था कि कांग्रेस धारा सभाओंकी आराम कुर्सियोंसे निकलकर जनताकी ओर एक बार फिर तेजीसे बढ़ रही थी और उन्हीं सम्भावनाओंके विरुद्ध लीग ? अपने जन्म जात उद्देश्योंको पूरा करनेके लिए बेचारी गरीब अपढ़ मुसलमान जनताको भड़कानेपर उतर आयी थी। लीगके पीछे कौन सी शक्तियां काम कर रही हैं, इसका भण्डा फोड़ स्वयं मौलाना साहेबने सन् ४६ के चुनावके पश्चात् किया है। मौलाना साहेबने विस्तारपूर्वक बतलाया है कि इस चुनावमें पुलिस, मजि-

स्टेट, कमिश्नर, गवर्नरकी बीबियां पूरबसे पच्छिम, उत्तरसे दक्खिन, सारे भारतकी नौकरशाही खुलेआम लीग को वोट देनेके लिए प्रचार और ताकत लगा रही थी। बात इसीसे साफ़ हो जाती है कि लीग क्या है और क्योंकर कायम है।

अभी हालमें गलत या सही, कुछ अखबारोंमें कुछ ऐसी बातें छपी थीं कि जिना साहेबको लाखों रुपये गुम-नाम जरियोंसे मिलते हैं कि वह पाकिस्तानका प्रचार करें। रुपया कौन देता है, कहांसे देता है, देता भी है या नहीं, इसमेंसे किसी भी बातका हमारे पास प्रमाण नहीं है। परन्तु (विशेषतः जबसे मौलाना साहेबने भण्डा फोड़ किया है) इतना तो हम कह ही सकते हैं कि जिस लीगकी असलियतमें ही शुबहा है उसके पाकिस्तानी नारोंमें कहांतक तत्व हो सकता है। मौलाना साहेबमें एक नहीं अनेकों बार पाकिस्तानका विरोध किया है, केवल इसलिए नहीं कि जिना या किसी भी लीगीने पाकिस्तानकी कोई रूप-रेखा पेश नहीं की है बल्कि इसलिए भी कि पाकिस्तान (यहां पाकिस्तान हमारा विषय नहीं है और इस मात्राके सरल धरातलपर उसका विवेचन हो भी नहीं

सकता) ऐसा गलत नारा है जिसके अंधकारमें भोले-भाले मुसलमानोंको मजहबका उन्माद भरकर आसानीसे गुमराह किया जा रहा है। मौलाना साहब कभी गवारा नहीं कर सकते कि मुसलमानोंको गुमराह करके खंदकमें डाल दिया जाय।

एक बात और रह जाती है। मौलना साहेबको लीग वाले कांग्रेसकी गुड़िया कहते हैं। सीधे-सादे लोगोंको यह सरासर धोखेमें डालनेकी बात है। मौलाना साहेब, जब कांग्रेसका दृष्टिकोण सुधारवादीसाही रहा, क्रांतिकारी समझे जाते थे। बंगालके क्रांतिकारियों और स्वदेशी आन्दोलनसे उनका गहरा सम्बन्ध रहा है। जब कांग्रेसका दृष्टिकोण भी उग्र हो गया तो मौलाना साहेबने उसे अपना लिया। मतलब यह कि मौलाना साहेब कांग्रेसकी गुड़िया नहीं, कांग्रेसको ही मौलाना साहेबने अपना हथियार बनाया।

अंतमें हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि मौलाना साहेबको हम केवल मुसलमानोंका नहीं, सारे हिन्दुस्तानका नेता समझते हैं। अपनी आजादीकी लड़ाई-में हम उनके पीछे-पीछे सदा उनकी आवाजमें आवाज मिलाते हुए आगे बढ़ेंगे:—

सर फरोशी की तमन्ना, अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना, बाजुए कातिल में है।

१५

त्रिपुरी कांग्रेसके पश्चात् भी कोई ऐसी व्यवस्था न हो सकी जिससे देशके नेता एक-चित्त होकर कार्य कर सकते।

सुभाष बाबू राष्ट्रपति चुन लिये गये थे परन्तु कांग्रेस ने यह भी शर्त लगा दी थी कि वह अपनी कार्य कारिणी समितिका चुनाव गांधीजीकी सलाहसे करें।

इस बातपर तनिक ठण्ढे दिमाग और निष्पक्षतापूर्वक विचार करना है। बात यह थी कि सुभाष बाबूका गांधी-जीकी रायके विरुद्ध भी राष्ट्रपति चुना जाना सिद्ध करता है कि सारा देश उनपर फिदा था, परन्तु साथ ही साथ देश यह भी चाहता था कि राष्ट्रका यह नवयुवक नेता उस महापुरुषकी देख रेखमें ही आगे बढ़े जिसने भारतको सदियोंकी धूल और कीचड़से उठा कर मजबूत टांगोंपर खड़ा कर दिया था।

सच्चाईपूर्वक देखा जाय तो सुभाष बाबूके साथ-साथ गांधीजीकी सलाहकी शर्त लगा देना कांग्रेसके लिए कोई

अयुक्तिपूर्ण बात न थी, विशेषतः इसलिए और भी कि कांग्रेस, जो अपने अपार त्याग और रक्तके एक-एक बूंदसे देशको इस हदतक लायी थी, यह कभी नहीं चाहती थी कि कहीं जवानीके जोश और जल्द बाजीमें देशकी गाड़ी-को किसी अपरिचित मार्गके किसी अवाञ्छित उलझनमें फँसा दिया जाय। यह कहना सरासर झूठ और गलत होगा कि सुभाष बाबू या उनके दलको छोड़कर शेष सभी गांधीजीके क्रीत दास और सुभाष बाबूके शत्रु थे। पण्डित जवाहरलालने भी, जो नवयुवकोंके ही नेता हैं, सुभाष बाबूका समर्थन नहीं किया। सरहदी गांधी अब्दुल गफ्फार-खांने भी सुभाष बाबूका समर्थन नहीं किया था। मौलाना आजादने भी सुभाष बाबूका समर्थन नहीं किया था। क्या ये सब भी झूठे और सुभाष बाबूके शत्रु थे। हर्गिज नहीं। फिर बात क्या थी ? बात वही थी, जो हमने ऊपर कही है।

त्रिपुरीके पश्चात् कार्यकारिणीके चुनावका अनिवार्य प्रश्न सामने आया। कांग्रेसके विधानमें अंग्रेजी और अमेरिकन पद्धतियोंका सम्मिश्रण हुआ है। राष्ट्रपतिका चुनाव तो प्रतिनिधि गण करते हैं परन्तु राष्ट्रपति चुन

जानेके पश्चात् राष्ट्रपति अपनी कार्यकारिणीका चुनाव स्वयं करते हैं ताकि अपने मनोनुकूल लोगोंको लेकर वह निर्विघ्न रूपसे सफलतापूर्वक कार्य कर सकें। यह कहिये कि देशके नेता सुभाष बाबूकी नीतिसे या तो असहमत थे, या अपरिचित थे। इसलिए आवश्यक था कि वे अलग खड़े होकर सुभाष बाबूको निर्विघ्न मार्ग दे दें। परन्तु इनके अलग हो जानेका मतलब था कि राष्ट्रका गुरुतर भार वहन करनेके लिए फिर रह ही कौन जाता था जिसके पीछे देश विश्वासपूर्वक आगे बढ़ता।

कार्यकारिणीके १४ सदस्योंके साथ मौलाना आजादने भी इस्तीफा दे दिया। सुभाष बाबूने अंतमें कलकत्तामें अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटीके सामने राष्ट्रपतित्वसे इस्तीफा दे दिया और राजेन्द्र बाबू कार्यकारी राष्ट्रपति चुने गये। इसके पश्चात् रामगढ़में कांग्रेसका अंतिम अधिवेशन हुआ और मौलाना आजाद राष्ट्रपति चुने गये।

इस बीचमें कांग्रेसने मंत्रिमण्डलोंको त्याग दिया था जिसका कि हम उल्लेख कर चुके हैं। फिर सन् '४१ के वैयक्तिक सत्याग्रहके पश्चात अगस्त '४२ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटीका बम्बईमें ऐतिहासिक अधिवेशन

हुआ जिसमें गांधीजीका विश्व-विख्यात 'भारत छोड़ो' ताव पास हुआ।

परन्तु सरकारने पहलेसे ही योजना बना रखी थी। देश भरके नेता एक-एक करके गिरफ्तार कर लिए गये और मौलाना साहेब भी उन्हींके साथ अहमद गढ़के किलेमें ठूंस दिये गये। परन्तु जिन्होंने देश सेवाकी ही कसम खा रखी हो वह कैदमें भी आजादीकी तैयारी करते रहते हैं। इस समय पढ़ना लिखना ही उनका मुख्य कार्य बन जाता है।

मौलाना साहब यों भी बड़े अध्ययनशील व्यक्ति हैं। उनका अपना पुस्तकालय साहित्यका एक सुन्दरतम संग्रह है। राजनीति या साहित्यकी कोई ऐसी प्रसिद्ध रचना न होगी जो उनके पुस्तकालयमें न हो। मौलाना साहेबके सुव्यवस्थित पुस्तकालयको देखकर हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि देशके पेचीदा मसलोंमें फँसे रहनेके साथ ही वह संसारकी गति-विधिसे परिचित रहनेके लिए कितना व्यापक अध्ययन करते हैं।

अहमदगढ़में मौलाना साहेबने खूब अध्ययन किया और कई अमूल्य पुस्तकोंकी रचना भी की है। परन्तु

कैदकी अस्वास्थ्यकर परिस्थितियोंमें उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वहांसे कलकत्ताके अपने गांवमें नजरबन्द कर दिये गये। अन्तमें वहींसे अन्य नेताओंके साथ छोड़े गये।

इस जालिम कैदके सम्बन्धमें एक मुख्य बात यह स्मरण रखनेकी है कि बेगम आजादने रोगमें घुल-घुलकर प्राण त्याग दिया परन्तु निर्दय नौकरशाहीने यह भी न किया कि संसारसे सदाके लिए विदा होती हुई स्त्रीको एक नजर देख लेने भरकी मौलाना साहेबको फुर्सत दे देती।

युद्ध समाप्त हुआ, और सरकारने आवश्यक समझा कि देशमें शान्ति और सुव्यवस्थाकी स्थापना करके युद्धोत्तर समस्याओंको सफलतापूर्वक हाथमें लिया जाय। यह समझनेकी गलती हर्गिज न करनी चाहिये कि सरकारने केवल अपने वादोंको पूरा करनेके लिए ही देशमें स्वशासनकी बात छेड़ी थी, बल्कि इसमें अंग्रेजोंकी अपनी आवश्यकता और मजबूरियाँ भी हैं ठीक उसी प्रकार जैसे चर्चिलकी तानाशाहीको खतम करके इंगलैण्डमें मजदूर सरकारकी स्थापना आवश्यक प्रतीत हुई।

लार्ड वेवल इंगलैण्ड गये और वापस आये। सलाह

मविश्रेकी बात छिड़ी परन्तु कोई भी बात केवल राष्ट्रपतिसे ही की जा सकती है। आखिरकार लाख सरकारी अनिच्छा होते हुए भी मौलाना आजाद बुलाये गये, शिमला कांफ्रेंस शुरू हुई। देश भरके लोग आये, बड़ी बातें हुई परन्तु नतीजा कुछ नहीं।

इसी बीच इंगलैंडमें मजदूर दलकी स्थापना एटलीके नेतृत्वमें हुई और उन्होंने भारतमें स्वशासन कायम करनेकी घोषणा की। और २ सितम्बर सन् १९४६ को श्रीजवाहरलालजीकी नेतृत्वमें दिल्लीमें अन्तर्कालीन सरकारकी स्थापना हुई। मार्च १९४७ में लार्ड वेवल इङ्गलैंड वापिस चले गये और लार्ड माउण्ट बेटन वायसराय होकर भारत आये। २८ जुलाई १९४७ को पार्लियामेण्टने भारत स्वतन्त्र बिल पास किया। लीग और कांग्रेसमें समझौता न होनेसे भारतवर्षने दो टुकड़ोंमें स्वतन्त्रता प्राप्ति की। अपने देशमें अपना राज्य स्थापित हुआ। मौलाना आजाद केन्द्रीय राष्ट्रीय सरकारके प्रथम शिक्षा मन्त्री नियुक्त हुए। आजतक महत्वपूर्ण उस पदपर बड़ी योग्यतासे देशकी सेवामें संलग्न हैं।

मध्यपूर्व एशियाके देशोंसे भारतवर्ष सांस्कृतिक

सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए एक सद्भावना मंडल इनके नेतृत्वमें भेजा गया। यह मण्डल इराक, इरान, टर्की, मिस्र आदि कई देशोंकी सरकारोंसे सम्बन्ध स्थापित करके भारतवर्ष से घनिष्ठता बढ़ाया।

१६

मौलाना साहेब नियमतः शुद्ध खद्दरधारी नेता हैं। खद्दरमें उनका पूर्ण विश्वास है, इसे वे देशकी दरिद्रता और अमीर-गरीबके भेदका विनाशक शस्त्र समझते हैं। परन्तु यदि उनसे कोई कहे कि आप गांधीजीके समान लँगोटी लगाकर किसी उजाड़ गांवमें चर्खा कातते और कतवाते रहें तो शायद वह कभी भी सफल न हों। गांवमें भी वह अपनी चिरपरिचित खद्दरकी पोशाकमें पुस्तकोंके बीचसे ही लोगोंके सुख और समाधानकी व्यवस्थामें रत मिलेंगे। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि आग लगी हो और मौलाना साहेब पुस्तकें पढ़ते रहेंगे। समय पड़नेपर वह सबसे आगे बढ़कर, सबसे अधिक सक्रिय भाग लेते हैं। कलकत्तामें हिन्दू मुस्लिम दंगा हो रहा था। उस समय रातकी रात, दिनका दिन नींद हराम करके जानको

खतरेमें डालकर वह हजारोंकी जान बचानें लिए कलकत्तेकी खतरनाक गलियोंमें घूमते रहे।

मौलाना साहेब धुरन्धर विद्वान और उच्चकोटिके राजनीतिज्ञ होनेके साथ ही एक श्रेष्ठ कवि भी हैं। उनकी कविताओंने देशको वह राग दिया है जिसकी गूँजसे सरकारकी संगीन दीवारें भी हिल गयी हैं, जिसकी कल्पना और 'काफियों' (छन्दों) ने हाली साहेब जैसे उर्दूके महाकविकी भी श्रद्धा प्राप्त की थी।

मौलाना साहेब शब्द-शास्त्र (Philology) के बड़े प्रेमी हैं अपने सहयोगी नेताओंके साथ भोजन या मनबहलावके समय शब्द-निर्माणमें उन्हें बड़ा आनन्द आता है।

मौलाना साहेब बड़े धार्मिक व्यक्ति हैं परन्तु उनकी धार्मिकताको समझनेके लिए 'दीन' और 'मजहब' दो शब्दोंको समझ लेना जरूरी है। 'दीन' ईश्वर और सत्यका तात्विक विवेचन करता है और उस विवेचनको प्रत्येकके लिए व्यावहारिक रूप देना मजहबका काम है। ईश्वर में हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिख और पार्सी—सभी विश्वास करते हैं। यह दीन है। परन्तु हिन्दू मन्दिरमें, मुसलमान

मस्जिदमें, ईसाई गिरजाघरमें, सिख गुरुद्वारेमें उसी एक ईश्वरकी आराधना करता है। हिन्दू पूजा और प्राणायाम, मुसलमान नमाज और अजानका मार्ग ग्रहण करता है। यह भिन्न-भिन्न मार्ग, भिन्न-भिन्न तरीके मजहबके अन्तर्गत आता है। मजहब भिन्न-भिन्न होते हैं और होंगे भी, परन्तु दीन तत्वतः सभी एक हैं। मौलाना साहेबका यही 'दीन और यही 'मजहब' है।

मौलाना साहेब शायद ही कभी अंग्रेजी बोलते हैं परन्तु उनका पुस्तकालय अंग्रेजी और फ्रांसीसी पुस्तकोंसे भरा है। वेद और उपनिषद्के मूल्यवान ग्रन्थ भी हैं। कभी आप उन्हें ह्यु गो और डूमाके उपन्यासके साथ पायेंगे तो कभी न्याय दर्शनकी ग्रन्थियोंमें उलझे हुए देखेंगे। आप अकाट्य तार्किक हैं। वाद-विवादमें विरोधियोंको वह इतनी सरलतापूर्वक निढाल कर देते हैं कि वह देखने ही योग्य होता है।

मौलाना साहब बड़े ही सरल और सादे व्यक्ति हैं। उनके दफ्तर या शयनागारमें आप पुस्तकोंके अतिरिक्त कुछ पायगे ही नहीं, एक फोटो भी नहीं। मौलाना साहेब बड़े संयमशील व्यक्ति हैं। सिगरेटके सिवा और कोई

शौक उनको छूतक नहीं गया है। परन्तु यह शौक शौक ही है, व्यसन नहीं। जब चाहते हैं छोड़ देते हैं। बड़े तड़के उठनेके आदी हैं। सिनेमा या तमाशोंसे वह सदा दूर रहते हैं।

* समाप्त *

जीवनी सं

बाबू राजेन्द्रप्रसाद	जे
मीराबाई	ऐ
महात्मा कबीरदास	स
पं० मोतीलाल नेहरू	
वीर दुर्गादास	
लाला लाजपत राय	लोकमान्य तिलक
सरदारवल्लभभाई पटेल	श्री चितरञ्जनदास
कार्ल मार्क्स	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर
कमला नेहरू	महात्मा टालस्टाय
स्वामी विवेकानन्द	नेपोलियन बोनापार्ट
कस्तूर बा	श्री जवाहरलाल नेहरू
महर्षि रवीन्द्र	सुभाषचन्द्र बोस
रामकृष्ण परमहंस	वीर अमरसिंह राठौर
महाराणा प्रताप	गुरु गोविन्द सिंह
स्टालिन	स्वामी शङ्कराचार्य
महात्मा गांधी	शिवप्रसाद गुप्त
गणेशशंकर विद्यार्थी	जमनालाल बजाज

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस।